International Journal of Science and Social Science Research [IJSSSR] ISSN: 2583-7877

शीर्षक–अन्य पिछड़ा वर्ग : ग्रामीण परिदृश्य एक अवलोकन

डॉ0 ओमप्रकाश दूबे

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, राजा श्रीकृष्ण दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

Author Email: opdubey2356@gmail.com

सार–यह आलेख भारतीय गांवों के बहुआयामी परिदृश्य का अवलोकन प्रस्तुत करता है, जिन्हें भारत की आत्मा माना जाता है और जिसकी अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। गांवों का सामाजिक जीवन जाति, नातेदारी, अर्थव्यवस्था, राजनीति और धर्म के इर्द–गिर्द संरचित होता है। यद्यपि आंतरिक रूप से भिन्न, भारतीय गांवों में कई समान विशेषताएं हैं। कृषि ग्रामीणों की आय का प्रमुख स्रोत है, और गांव शहरों से दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति और मौसमी फसलों के माध्यम से आर्थिक रूप से जुड़े हुए हैं। साप्ताहिक बाजारों और मेलों ने गांवों को बाहरी दुनिया से जोड़ा है, जो आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों भूमिकाएं निभाते हैं। पूंजीवाद और शहरीकरण की प्रक्रियाओं ने गांवों को बड़े आर्थिक तंत्र का हिस्सा बनाया है। ऐतिहासिक रूप से, गांव कभी भी पूरी तरह से स्वावलंबी नहीं रहे, बल्कि हमेशा बड़े समाज और सभ्यता का हिस्सा रहे हैं। ब्रिटिश शासन ने गांव और शासक के संबंधों को बदला और गांवों को एक प्रभावी प्रशासन से जोड़ा। स्वतंत्रता के बाद, संसदीय लोकतंत्र और वयस्क मताधिकार ने गांवों को राजनीतिक व्यवस्था के साथ और अधिक एकीकृत किया। पंचायती राज व्यवस्था, विशेष रूप से 73वें संशोधन के बाद, स्थानीय शासन को मजबूत करते हुए गांवों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जाति व्यवस्था गांव के सामाजिक ताने–बाने का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो अनुक्रम और कभी–कभी भूमि स्वामित्व से जुड़ी है। धार्मिक अध्ययन में लघु और वृहत परम्पराओं के बीच लेन–देन, जैसे कि संस्कृतिकरण, गांवों में स्पष्ट है। गांवों ने विकास की योजनाओं के माध्यम से परिवर्तन का अनुभव किया है जैसे कि भूमि सुधार, सड़कों का विकास, कृषि तकनीक में सुधार, और विभिन्न सरकारी कार्यक्रम। इन प्रयासों के बावजूद, गांव अभी भी आधारभूत सुविधाओं और अंधविश्वास जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं। कुल मिलाकर, गांवों का स्वरूप समय के साथ बदल गया है, जो बड़े राष्ट्रीय और वैश्विक परिवर्तनों से प्रभावित हुआ है।

प्रमुख शब्दः गांव, ग्रामीण जीवन, जाति व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, कृषि, राजनीति, पंचायती राज, सामाजिक संबंध, लघु परम्परा, वृहत परम्परा, विकास योजनाएं

I. प्रस्तावना

गांधी जी कहते हैं अगर आपको भारत का असली दर्शन करना है तो आपको गांव जरूर जाना चाहिए, क्योंकि हमारे[1] देश की आत्मा गांव में ही बसती हैं। भारत एक कृषि प्रधान देश है। प्राचीन काल से ही हमारे देश की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि ही रहा है। कृषि पर हमारी निर्भरता के साथ ही यह भी तथ्य हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है कि देश की सत्तर–प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या गांवों में ही निवास करती है। किसी कवि ने सत्य ही कहा है– "है हमारा हिन्दुस्तान कहाँ, यह बसा है हमारे गांवो में"।

अतः भारतवर्ष के महत्व का वास्तविक मूल्याकंन यहां के गांवों से ही संभव है। उन्हें किसी भी दृष्टिकोण से पृथक नहीं किया जा सकता है। गांव का सामाजिक जीवन जाति, नातेदारी, अर्थव्यवस्था, राजनीति और धर्म के आस–पास संगठित होता है। लोगो का सामाजिक जीवन अधिकतर उसके गांव तक सीमित होता है, उनकी आजीविका और जीवन ग्रामीण वातावरण और संसाधनों के आस–पास ही घूमता है। इसलिए गांव इस तरह की प्रतिष्ठा और व्यक्तिगत पहचान का बिंदु होता है। जाति, वर्ग या स्थानीयता ग्रामवासियों को पहचान का एक आवश्यक स्रोत प्रदान करता है। समान समय पर, गांव एक अलग इकाई नहीं हैं, मेले, पर्वों और अन्य उत्सवों द्वारा गांव का वृहत संसार से जुड़ना आवश्यक है। उत्तर– भारत के गांवों में, गांव से बाहर विवाह की परम्परा ने नातेदारी और शादी संबंधों के द्वारा एक गाँव को दूसरे गांव से जोड़ा है।

गांवो के अध्ययनों के संदर्भ में एम. एन. श्रीनिवास (1952)[2] से लेकर ए.एम शाह[3] और आई. पी. देसाई[4] (1988) का काम यह चर्चा करता है कि अंत : जाति और अंतर जाति के संबंधों में एक जुटता कैसे काम करती है ताकि गांव का स्थायित्व बना रहे। समान रूप से भारतीय गांव अपने आंतरिक बनावट और संगठन में, प्रकृति और विश्वदृष्टि में, और उनके जीवन शैली और सोचने के तरीकों में वृहत पैमाने पर भिन्न हैं। फिर भी पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में भारतीय गांवो में अनेक समान विशेषताएं पायी जाती हैं। प्रत्येक गांव एक अलग व्यवस्था है, जिनके पास रीति–रिवाज और प्रथाएं है और वह एक सामूहिक एकता रखते है। विभिन्न जाति और वर्ग जो गांवो में रहते हैं वो आर्थिक, सामाजिक और परम्परागत व्यवस्था में एकता परस्पर और आपसी सहयोग के द्वारा रहते है, जो स्वीकृत और निरन्तर समझौता द्वारा स्वीकृत होती है।

II. गांव एक आर्थिक इकाई के रूप में

गांव के लोगों की आय का मुख्य स्रोत कृषि है और वे दो प्रकार की हैं। एक जो आंशिक रूप से शहरों से जुड़ा हुआ है और दूसरा वह जो शहरों से पूरी तरह से दूर हैं। जो लोग शहरों से जुड़े हुये हैं वे दैनिक आवश्यकताओं ने पूरा करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जैसे कि सब्जियां, पोल्ट्री, फार्म आदि प्रदान करना, वे हमारी अर्थव्यवस्था को विकसित करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दूसरा वह जो शहरों से दूर हैं ऐसे गांव कुछ मौसमी फसलें जैसे गेहूं, चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा, दलहन आदि उपलब्ध करातें हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण लॉक डाउन है, जिसमें कृषि ही थी जिसने डूबती अर्थव्यवस्था को बचाया।

III. गांव और बाहरी संसार के मध्य आर्थिक संबंध

गांव का बाजार पूंजी पूतियों के बाजार से अलग है उसने मात्र आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं की बल्कि राजनीतिक, पुनःसृजन और सामाजिक उद्देश्यों की भी पूर्ति करता है। साप्ताहिक बाजार या हाट जो पौराणिक समय से ही ग्रामीण भारत में हर जगह पर हैं[5] वह पड़ोस के गांवों और शहरों से मुख्य संपर्क बनाते हैं। वो सब स्थानीय रूप से अनुपलब्ध सामान को लाने का महत्वपूर्ण स्थान था। जैसे सोना, चांदी जो शादी के लिए ग्रामीण भारत में आवश्यक था। पुष्कर में वार्षिक ऊँट का मेला ग्रामीण बाजार का उदाहरण है, जो पुरातन समय से विद्यमान है। साप्ताहिक बाजार केवल आर्थिक अदला–बदली के संस्थान के रूप में ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक संस्थान के रूप में भी महत्वपूर्ण थे और आज भी हैं यद्यपि आज बेहतर यातायात और संचार व्यवस्था होने के कारण स्थानीय शहर गांव वालों की पहुँच में हैं।

गाँव में लगने वाले प्रसिद्ध मेले जैसे कि पशु मेला[6] में अनेक खरीदार और बिक्रीकर्ता दूर–दूर से आते है, इस तरह गांव एक सांस्कृतिक संख्या के रूप में भी भूमिका निभाता है।

गांवों में जाति आधारित विशेषज्ञ व्यवस्था कार्य करती है, जाति आधारित विशेषज्ञ व्यवस्था का मतलब है कि मात्र कुछ लोग ही खास काम कर सकते है। जैसे मात्र कुम्हार जाति के लोग ही बर्तन बना सकते हैं, लोहार जाति के लोग ही लोहे का सामान बना सकते है और इसी तरह अन्य है।[7] सभी कामगार और सेवा देने वाली जातियां एक ही गाँव में नहीं रहती थी, खासकर जिन गांवों की बसावट छोटी हो। कुछ जातियां अनेक गांवों में कार्य करती थी और आपस में गाँव बाँट लेती थी जैसे नाई, पुजारी, डॉक्टर (वैध) इत्यादि। पुनः शहरी आबादी अपनी आधारभूत आवश्यकताओं के लिए जैसे अनाज, संशोधित खाने के लिए पदार्थ और हस्तकला के लिए गोवों पर ही निर्भर थे और आज भी हैं।[8]

जब पूंजीवादी व्यवस्था ने ग्रामीण भारत में प्रवेश किया, तब गांव का बाजार औपचारिक बाजार तंत्र से जोड़ दिया गया। अलग– अलग गांवों में आर्थिक अवसर की उपलब्धता में फर्क था खासकर औद्योगीकरण और शहरी करण के कारण, जिसने गांवों को एक वृहत आर्थिक व्यवस्था का हिस्सा बना दिया।

उपरोक्त पहलूओं को समझने हेतु हमें गांवों पर किये गये कुछ व्यापक अध्ययनों को भी देखना होगा। इसके कुछ उदाहरण है–

1. एस. सी. इबे का भारतीय गांव (1955) अध्ययन किसी गांव का पहला सम्पूर्ण अध्ययन था, जो शमीप्पेट में किया गया था। इस में एक पूरा अध्याय ग्रामीण जीवन में हो रहे परिवर्तन के ऊपर था, जिसमें हैदराबाद शहर से बढ़ रहे आर्थिक संबंध सम्मिलित थे और सामाजिक समूहों जैसे धोबी के लिए भी।[9]

2. मैकिम मरियट ने उ0 प्र0 (1955) के अलीगढ़ जिले के किसान गढ़ी के अध्ययन में विभिन्न गांवों के लोगों के लेन देन का विस्तृत विवरण दिया है, उन्होंने बताया है कि कैसे ब्राह्मण, पुजारी, नाई, कुम्हार, बढ़ई, धोबी और सफाई करने वाली जाति के लोग किसान गढ़ी में रहते हैं, कैसे पहन्द्रह गांवों में वंशानुगत संरक्षक (जजमान) की सेवा के लिए जाते हैं और उनकी करीब आधी आमदनी बाहरी जजमान कमाते है। व्यापारी, दैनिक मजदूर जो किसान गढ़ी में रहते है वो नियमित रूप से अनेक मील यात्रा करने विभिन्न गांवों में जाते हैं।[10]

3. एम. एन. श्रीनिवास कर्नाटक के रामपुरा (1955) के अपने अध्ययन में पाते हैं कि कैसे हितीय विश्व युद्ध प्रभु जमीदार जाति ओकना लीगा के लिए बढ़ी हुई नगदी, लड़ाई के समय के राशन और अन्य वस्तुओं की कमी के लिए उपयोग में लाई गई, जिसने कालाबाजारी को बढ़ावा दिया। युह के समय मुनाफे को विभिन्न तरह से उपयोग किया गया, जैसे गांव का विघुतीकरण हुआ, दो चावल मिल लगाये गये, बस की लाइन भी प्रारम्भ की गयी, जिसने मैसूर शहर से संपर्क को आसान बना दिया।[11]

4. कैथलीन गॉफ का कुम्बापैटे गांव (1955) का अध्ययन, तमिलनाडु के तंजौर जिले पर आधारित है, जिसमें वो वर्णन करती है कि कैसे प्रबल ब्राह्मण समूह शिक्षा और रोजगार के लिए शहर गये और कुम्बापैटे व बगल के कम उपजाऊ गांव से निम्न जातियों का प्रवास, कुम्बापैटे को वृहत आर्थिक व्यवस्था से से जोड़ने के लिए उतरदायी है।[12]

5. एम. एस. ए. राव ने यादवपुर (1974) दिल्ली के किनारे पर अवस्थित, के अपने अध्ययन में पाया कि दिल्ली शहर के विकास के लिए शहरी व्यवसायों के लिए विभिन्न क्षेत्रों जैसे बागवानी, डेरी और मुर्गा पालन, खेती, व्यापार और यातायात आदि क्षेत्रों में अवसर उत्पन्न किये है।[13]

उपरोक्त आधार पर हम यह निष्कर्ष 'निकाल सकते है कि औद्योगिकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से प्रारम्भ हुई और स्वतंत्रता के बाद उसने और अधिक प्रेरणा प्राप्त की और गांवों को वृहत आर्थिक तंत्र का हिस्सा बनाया। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था, नियोजित विकास और कल्याण कार्यक्रम जो सरकार द्वारा लागू किये गये उससे और अधिक प्रभावित हुई।[14]

भारत में कोई भी दो गांव समान नहीं है, यद्यपि उनमें अनेक सामाजिक आर्थिक पैमानों पर कुछ समानता है । कल्याण और विकास का कार्यक्रम, कोओपोरेटिव बैंक, व्यवसायिक कृषि, कृषि की हरिव क्रांति की तकनीक, प्रजातंत्र की प्रक्रिया, महिलाओं के लिए स्वयं–सहायता समूह का विकास, और अनेक दूसरे विकसित कार्यक्रम विकास के लिए लक्षित हैं, जो सरकार द्वारा चलाये गये हैं। इसका प्रयास था कि आजादी के बाद के भारतीय गांवों को राष्ट्र निर्माण प्रचलन के लिए आदर्श बनाया जाये।

IV. गांव राजनीतिक इकाई के रूप में

क्षेत्र कार्य पर आधारित, अनेक नृविज्ञानिक अध्ययनों, द्वारा वर्णन किया गया है कि भारतीय गांव हमेशा से वृहत समाज और सभ्यता का भाग रहे हैं और स्वालंबी नहीं रहे हैं।

19वीं शताब्दी के प्रारंभ में ब्रिटिश प्रशासको से भारतीय गांवों को छोटा गणतंत्र कह कर संबोधित किया[15], क्योंकि इनमें सामान्य रूप से स्वयं की सरकार थी, प्रायः उच्च राजनीतिक सत्ता का कोई हस्तक्षेप नहीं था। राज्य ने मात्र युवा आदमी को लड़ाई में सेवा के लिए मांग की, और राज्य के लिए जमीन की पैदावार में राजस्व के लिए लिए हिस्सा मांगा था। भारतीय गांवों का यह विश्लेषण अत्यधिक सामान्य था और कहा गया कि गांव इस बात के प्रति उदासीन थे कि जिस भू–भाग पर रहते है, उस भू–भाग पर कौन राज करता हैं। यह मान्यता कि ब्रिटिश पूर्व के भारत में गांव राजनीतिक रूप से स्वतंत्र थे (उदाहरण स्वरूप – भारत में ब्रिटिश शासन के द्वारा एकत्रीकरण से ठीक पहले) केवल स्थानीय प्रमुख या राजा को कर देने के अलावा और युवा आदमी को युद्ध में देने की बात गलत है। राजा और उनके विषय के मध्य जटिल संबंध था। राजा द्वारा उनके विषयों से संबंधित अनेकों कार्य किये जाते थे। सड़क, तालाब, सिंचाई के लिए नहर के साथ–साथ मंदिर व यात्रियों के लिए सराय भी बनवाये जाते थे।[16] राजा पढ़े–लिखे व विद्वान ब्राह्मणों को जमीन उपहारस्वरूप दिया करते थे।[17] राजा सभी जाति समूहों और सभी पंचायतों का प्रमुख होता था। परस्पर जाति क्रम में कोई भी विवाद या अन्य अंतर जातिविवाद पर राजा द्वारा निर्णय लिया जाता था। यह मात्र हिन्दू शासकों द्वारा ही नहीं अपितु मुगल शासको व सामंती राजा भी एक जाति को प्रभावित करने वाले सभी प्रशनो का समाधान निकालते थे।[18]

'ब्रिटिश पूर्व भारत में, गांव राज्य (अधिकतर राजसी राज या देशी राज्य) से सक्रिय संबंध का आनंद लेते थे। सामान्य लोग किसने गद्दी संभाली का ध्यान रखते थे क्योंकि वे अपना राजा ऐसा चाहते थे जो आक्रमण कारी सेना और ठगों के आक्रमण से उन्हें संरक्षित करे। यदि राजा स्थानीय प्रभु जाति से हैं तो उसकी जाति के लोग संकट के समय उसकी सहायता करेंगे। यह राजा के साथ एक असमान संबंध नहीं था क्योंकि गांव के लोग बाग़ी हो सकते थे। और उनके प्रतिद्वंदी को राजा बनाने में मदद कर सकते थे। गांव वाले दमनकारी शासन के विरुद्ध सामूहिक पलायन कर सकते थे। यदि ऐसा सामूहिक पलायन होता था, तब शासक राजस्व नहीं पाते थे क्योंकि जमीन देने हेतु उपलब्ध होती थी परन्तु मजदूरों की कमी होती थी। उस समय गांव राजनीतिक व्यवस्था से महत्वपूर्ण स्वतंत्रता के साथ–साथ पृथक्वता का भी आनंद लेते थे। ऐसा सड़क और यातायात के अभाव के कारण था। दैनिक मामलों में, राजा गांव वालों को स्वयं राज करने व फैसला करने का अवसर देते थे। प्रभु जाति के लोग गांव में पंचायत का निर्माण करते थे ताकि स्थानीय मुद्दे को सुलझा सके अंतर जातीय जगड़ो का विवरण करते थे और गांव में कानून और व्यवस्था बनाये रखते थे।

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से गांव और शासक के बीच का संबंध बदल गया।[19] ब्रिटिशों ने एक प्रभावी प्रशासन की स्थापन की जिसका कारण संचार व यातायात के विकास की वजह से राजनीतिक कब्जों का स्थापित होना था। गांव पंचायत की शक्ति को आधुनिक कोर्ट कानून के कारण बड़े स्तर पर कम कर दिया गया क्योंकि बड़ा झगड़ा और अपराधिक गलती को वही सुलझाया जाता था। अन्य सरकारी कर्मचारी जैसे पुलिस, राजस्व अधिकारी इत्यादि गांव में आते थे।

V. गांवों में जाति व्यवस्था और नातेदारी संजान

जाति समाज का संसार अनुक्रम पर आधारित व्यवस्था हैं। लोगों को उच्च या निम्न समूहों में बांटा गया है, सभी को जन्म, उनके खाने, उनके पहनावे, जेवरातों, प्रथाओं, और रिवाजों के आधार पर एक अनुक्रम में बांटा गया है। पहले तीन वर्ष, अर्थात ब्राह्मण (पुजारी व विद्वान), क्षेत्रिय (पाषक और योद्धा) और वैश्य (व्यापारी) को दिध्ज या दोहरे जन्म वाले माने जाते है।[20] चौथा वर्ण जो शूद्रो का है, जिसमें अनेक व्यवसायी जातियाँ है जिनको सापेश्वित शुद्ध मानते है और उनको उनको अछूत नहीं समझा जाता। पांचवें मुख्य वर्ण में अछूत जाति[21] के लोग हैं। बहूत वर्षा प्रत्येक वर्ण में अनेक उपसमूह (जाति या उपजाति) है, जिनको उन्हीं के भीतर अनुक्रम में बांटा गया है। अनुभव जन्य अध्ययन बताते है कि वास्तव में अनुक्रम के मात्र दोनों विपरीत छोर ही अपेक्षाकृत स्थिर है, उनके बीच में, और खासकर मध्य के क्षेत्र में, वहाँ परस्पर की चर्चा के लिए बहुत विचारणीय जगह है (श्रीनिवास, 1994:5) आपसी अनुक्रम अस्थिर है और यह अब इस सच्चाई से है कि जाति में गतिशीलता संभव है (श्रीनिवास, 1976:175)।[22]

उच्च कर्मकांडी प्रस्थिति की मांग करने के लिए प्रयास, जिसे, श्रीवास ने सांस्कृतिकरण कहा है, सामान्य प्रक्रिया नहीं थी, और यह कर्मकांड और जीवन शैली का अनुकरण करके नहीं प्राप्त किया जा सकता है। समूह को यह स्थानीय शक्ति संरचना के स्तर पर भी मोल– भाव करना होगा। समान रूप से, धर्मनिरपेस पहलूओं पर दबाव देने से, यहां पर कुछ हद तक जुड़वा जाति का अनुक्रम और जमीन परस्पर जुड़े रहते हैं। बड़े जमीदार खासकर तथाकथित उच्च वर्ग ब्राह्मण और लिंगायत से है जबकि हरिजनों में अधिकतर सब लोग भूमिहीन मजदूर हैं। धनी परिवारों के विपरीत, गरीब लोग प्राय नगव्य हैं। (श्रीनिवास, 1976:1692)[23]

उपरोक कथन की चर्चा इसलिए की गई क्योकि यह व्यवस्था गांव पर आधारित है, जहां पर जातिव्यवस्था व धर्म पर आधारित अलगाव आसानी से देखने को मिल जाता है।

VI. लघु परम्परा, वृहत परम्परा

भारतीय गाँव का कोई भी धार्मिक अध्ययन में दोहरी प्रक्रिया को ध्यानिक विश्वासों और गांवों की परम्पराओं और वृहत भारतीय सभ्यता के मध्य एक साथ काम करता दिखाई देता है। मैंकिम मैरियट ने वृहत परम्परा व लघु परम्परा का विचार रोवर्ट रेड फील्ड (1955) से लेते हैं और उन्होंने शब्द दिए।[24] सवि भौमिकरण (गांव के संस्कृति तत्व वृहुत क्षेत्रीय या यहां तक की समाज में सम्मिलित है) और संकुचीकरण (जीवन भारतीय प्रवृत्ति के सांस्कृतिक तत्व जो विभिन्न संचार के साधनों स्तर से जैसे कहानी कहना और लोकनाटक के द्वारा गाँव के स्तर तक रस रहे है। जो क्रमशः इस दोहरी प्रक्रिया को लघु परम्परा और वृहत परम्पत के दो पहलू के आपसी लेन–देन को कहते है।

एम.एन.श्रीधि (1950) के सांस्कृतिकरण का विचार भी स्थानीय स्तर पर धर्म और सम्पूर्ण भारत के हिन्दुत्व के मध्य लेन–देन जो कि वर्ण पह आधारित है, को दिखाता है। संस्कृतिकरण भी सवि भौमिकरण व् बड़े धर्म की पहचान से संबंधित है। जैसे स्थानीय देवता या देवी का कुछ हिन्दू देवी या देवता के देवालय के रूप में पहचान होना। पर्व और देवी देवताओं के अलावा, ग्रामीण समुदाय का अन्य महत्वपूर्ण पहलू तीर्थस्थल है। धार्मिक जगहों ने भारत के दूर–दराज लोगों के लोगों को भी आकर्षित किया है। पारस्परिक भारत में, मंदिरों और धार्मिक शहरों जैसे गया, मथुरा, अजमेर, वाराणासी, पुरी, तिरुपती और अमृतसर ने लोगों को आकर्षित किया जबकि रास्ते खराब व असुरक्षित थे। इस तरह हम देखते है कि गांव के लघु और वृहत परम्परा लेन–देन रहा है।

जाति अन्तर्विवाह (जाति के अंदर विवाह) और ग्राम बहिर्विवाह (गांव से बाहर विवाह) वृहत रूप से हुए हैं। गांव से बाहर संबंध का मतलब उन क्षेत्रों में त्योहार या खास अवसर पर यात्र करना है, जहाँ पर नातेदार (या संबंधी रहते हैं।

गांव का सामाजिक तंत्र, जाति, नातेदारी, शादी मतलब सामाजिक संबंधों के द्वारा बाहरी संसार से जोड़ना है। इस तरह से सामाजिक रूप से गांव एकाग्र इकाई नहीं है।

VII. गांवो की समस्याएं

भारतीय सभ्यता और आधुनिक सुख–सुविधा से कोसों दूर है, अपवाद स्वरूप में कुछ पक्के मकानों को छोड़कर कच्चे मामलों मकान व झोपड़ियाँ ही वहाँ के निवास स्थान है। स्वच्छ पेय जल का भी अभाव है। मल मूत्र की विधिवत निवासी नहीं है। गांव में गद्दे सड़ते है, दुर्गन्ध पैदा होती है। बिजली के लाभ से भी वंचित हैं। गांवों में चिकित्सालयों का अभाव है, स्वास्थ्य को लेकर चेतना भी बहुत कम है। प्रशिक्षित डॉक्टर व् क्वालिफाएड नर्स नहीं है। नीम हकीम और ओझाओं का राज है। जाइ–टोने आज भी ग्रामवासियों में स्वस्थ रहने की

औषधि है। गंडा– ताबीज उनको स्वास्थ्यप्रहरी और भाग्य विधाता है। इसी कारण छोटे–छोटे रोग भी गांवों में मृत्यु का कारण बन जाते है।

अंधविश्वास व रूढ़ि वादिता ने गांवों को कसकर पकड़ा हुआ है, साथ ही भौतिकता की चका– चोंध ने गांवों को गांव नहीं रहने दिया, गांव अपनी वह मौलिक विशेषता खोता जा रहा है, जिसमें भारत बसता है।

VIII. गांवों का बदलता स्वरूप

सब गांवों में नई चेतना, नई ज्योति, नया जीवन भी आया है। आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए सहकारी बैंक स्थापित हुए। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया है। बूदान यज्ञ ने किसान को भूमि का मालिक बनाया। भूमि कानून लागू कर भूमिसीना निश्चित कर दी गई। छोटे खेतों की समस्या का समाधान चकबंदी तथा सहकारी खेतों द्वारा किया गया। फसल को शहर तक पहुंचाने के लिए गांव को पक्की सड़कों से जोड़ा गया। ऋण देकर ट्रैक्टर दिए गये, कर्ज देकर अच्छे बीज और उर्वरक खाद दी गई। गांव के लोगों को कृषि में निपुण व शिक्षित के लिए रेडियो और दूरदर्शन से फसल पैदावार बढ़ाने इत्यादि पर कार्यक्रम चलाये जा रहे है। ग्रामवासियों की सहायता हेतु ग्राम सेवक व सेविकाएँ विद्युक्त की गयी है। कृषि की उन्नति के लिए कृषि विश्वविद्यालय स्थापित हो गए हैं।

ग्रामीण युवाओं को रोजगार, स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना, ग्रामीण शिल्पकारों की सुधार योजना, राष्ट्रीय सामाजिक सहायता योजना, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों की विकास योजना, इंदिरा आवास योजना, रोजगार गारंटी योजनाओं द्वारा गांवों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के प्रत्यक्ष सरकार द्वारा चलाए जा रहे है। जिस योजना ने गांवो के विकास के में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है वह है पंचायती राज योजना।

IX. पंचायती राज व्यवस्था

स्वतंत्रता के बाद संसदीय प्रजातंत्र और व्यस्क मताधिकार के परिचय ने गांव को वृहत राजनीतिक व्यवस्था के साथ और अधिक जोड़ा है।[25] वर्तमान व्यवस्था में, गांव के लोग स्थानीय निकायों जैसे ग्राम पंचायत और विधानसभा के सदस्यों और लोकसभा के सदस्य का भी चयन करते है। चुनाव प्रचार के दौरान क्षेत्रीय और राष्ट्रीय राजनीतिक दल गांव में सक्रिय हो जाते हैं और अपने दल के लिए समर्थन जुटाते है। जैसा की पहले चर्चा की जा चुकी है कि सरकार के नियम और समुदाय विकास योजना भी गांव को प्रभावित करती है।[26]

राजस्थान के गांव, देवीसर (1959) के शोध में आनंद चक्रवर्ती द्वारा शक्ति और अधिकार के विचार का वर्णन किया गया है और अध्ययन किया गया है कि कैसे भूमि सुधार और पंचायती राज आधारित राजनीतिक प्रक्रिया गांव के सामाजिक और राजनीतिक संबंधों को प्रभावित किया और उनमें परिवर्तन लाया है।[27]

1992 का 73वाँ संशोधन ने (एस. सी./एस.टी.) को पंचायत में आरक्षण देने के साथ–साथ महिलाओं के लिए 1/3 स्थानों पर आरक्षण लाया और अन्य प्रवाधानों के अलावा प्रत्येक पांच वर्ष में चुनाव को अनिवार्य बनाया जिसने स्वयं की सरकार के लिए मार्ग प्रशस्त किया। ग्राम पंचायत निकाय के द्वारा अनेक योजनाओं की देख–रेख की जाती है और की जा सकती है।[28]

यद्यपि दैनिक प्रसाधन को चलाने के लिए चयनित पंचायत के साथ–साथ गांव एक राजनीतिक इकाई है, यह जिला का एक भाग है, जो राज्य का एक भाग है। राज्य भारतीय संघ का एक भाग है। यहां पर इन विभिन्न राजनीतिक स्वरों के बीच में अन्तः क्रिया होती है।[29]

गांवो कितने महत्वपूर्ण रहे है, यह अगर इतिहास को देखा जाए तो समझ आजाएगा, जैसे कि चोल, साम्राज्य की पूरी निर्भरता ही उनके गांवो पर थी।[30] यद्यपि गांवों का स्वरूप प्राचीन काल से अब तक बदलता ही चला गया है। स्वतंत्रता के समय से औद्योगिकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया ने गांव को वृहत आर्थिक तंत्र का हिया बना दिया था। संसदीय प्रजातंत्र और व्यस्क मताधिकार जाने के कारण गांवों का विभिन्न स्वरों पर राजनीति व्यवस्था के साथ और अधिक एकीकरण किया है।

यद्यपि निरंतर विकास की योजनाओं के बाद भी गांव समस्याओं से जूझ रहे है, जो किं अन्यत शोध का विषय है, चूंकि हमारे शोध का क्षेत्र[31]जौनपुर में स्थित केराकत तहसील है, जो कि 424 गांवों से मिलकर बनती है, उसकी यहाँ चर्चा करना समाचीन होगा।

सन्दर्भ सूची

1. Oscar, Lewi's : Village life in Northen India, Studies in a Delhi Village, Urban, University of Illionois Press, 1958, P. 138.
2. वही. पेज–249.
3. वही पेज –251–255.
4. शर्मा, रघुनन्दन : सामाजिक समरता एवं वर्ण–व्यवस्था, भोपाल, कापीराइट पब्लिकेशन, 2006. पेज–58.
5. वही. पेज–60–62.
6. वही. पृष्ठ–78.
7. वही. पृष्ठ–79–81.
8. वही. पृष्ठ–85–87.
9. Desari, A. R : Rural Sociology in India, Popular Publication, 1978- P. 11-12.
10. वही. पृष्ठ–19–21.
11. वही. पृष्ठ–25.
12. वही. पृष्ठ–32.
13. भारतीय गांव, इकाठ–4, एन. सी. ठ. आर.टी. नठ दिल्ली, पृष्ठ 49.
14. वही. पृष्ठ–51.
15. वही. पृष्ठ–53
16. वही. पृष्ठ–55.
17. वही. पृष्ठ–56
18. वही. पृष्ठ–59.
19. वही. पृष्ठ–59–60
20. वही. पृष्ठ–61.
21. वही. पृष्ठ–61.
22. केसरवानी, डॉ. प्रदीप कुमार : भारत में कृषि एवं कृषक समाज : परिवर्तितमान परिदृश्य, राका प्रकाशन, इलाहाबाद. पृष्ठ–14.
23. वही. पृष्ठ–17.
24. वही. पृष्ठ–18.
25. साठनाथ, पी. तीसरी फसल : अनुवाद, आनंद स्वरूप वर्मा, पृष्ठ–151.
26. देसाठ, ए. आर. भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, 2009. पृष्ठ–11.
27. वही. पृष्ठ–13.
28. वही. पृष्ठ–15.

29. वही, पृष्ठ–21.

30. "Uttar Pradesh in Statistics" Kalpa Shankar, APH Publishing, 1987, P. 91.

31. ‘‘Political process in Uttar-Pradesh : Identity, Economic Reforms, and Governance‘‘ Sudha Pai, Centre for Political Studies, Jawaharlal Nehru University, Pearson Education India, 2007, P. 47.